Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 1 | JANUARY 2023

कृष्णभक्ति- युगीन काव्य में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन दर्शन : एक अध्ययन

कालू राम [1]

[1] सहायक आचार्य (अतिथि शिक्षक), हिंदी साहित्य, राजकीय महाविद्यालय, जैतारण, जिला पाली|

ABSTRACT:

मध्ययुगीन कृष्णभक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में तद्युगीन समाज की गतिविधियों, सामाजिक संस्कारों, सरोकारों एवं सामाजिक रीति-रिवाजों का उल्लेख किया है उनकी कृतियों में सामाजिक जीवन की जो अभिव्यक्ति मिलती है, वह अद्भुत है।

मध्ययुगीन जन-साधारण का जीवन भौतिक साधनों के अभाव में व्यतीत हो रहा था और वह इन साधनों को इकट्ठा करने के लिए प्रतिबद्ध था किन्तु उसे उसमें पूर्ण सफलता नहीं मिली। अधिकांश लोग उदर-पोषण की चिन्ता में ही व्यामृत रहते थे। यद्यपि उच्चवर्ग जो कि इन चिन्ताओं से मुक्त था, उनका जीवन विलास के सम्पूर्ण साधनों के मध्य बीत रहा था। दोनों ही वर्गों का कोई उत्कृष्ट नैतिक आदर्श नहीं था। सभी का अपना अलग उद्देश्य था। किसी को भोजन का प्रबन्ध करना था तो कोई अपने भोग-विलासी जीवन में किसी नये भौतिक साधन का आगमन कर रहा था। ऐसे में कृष्णकाव्य धारा के भक्त कवियों ने अपनी आध्यात्मिक विचारधारा में कृष्ण के लोकरंजनकारी स्वरूप को प्रतिष्ठित करते हुए शासक वर्ग एवं शासित वर्ग दोनों को आध्यात्मिक अधिष्ठान प्रदान करके उनके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने का कार्य किया।

KEYWORDS:

सामाजिक जीवन, भक्ति, लोक संस्कृति, पशुपालन, आजीविका।

विषय प्रवेश :-

मध्ययुगीन साहित्य में व्यक्त सामाजिक परिदृश्य के माध्यम से समाज की जीवनशैली और उसका तदयुगीन विकसित रूप स्पष्ट होता है। तत्कालीन साहित्यिक के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि मध्ययुग का समाज किन-किन क्षेत्रों में कितनी उन्नति कर चुका था। मध्ययुगीन समाज के जीवनगत साधनों का विस्तार व विकास किस प्रकार का था? उनकी उपयोगिता व महत्ता किस प्रकार की थी? इस पर दृष्टिपात करते हुए मध्ययुग काव्य में लगभग सभी सामाजिक कृत्यों रूढ़ियों मान्यताओं को सभी पक्षों के साथ प्रस्तुत किया गया है।

मध्ययुगीन कृष्णभक्ति काव्य में अभिव्यंजित लोक जीवन के उन तत्वों की चर्चा सर्वप्रथम अपेक्षित समझी गयी है, जिनका महत्व प्रारंभिक या मूल आवश्यकताओं से संबंधित कहा जा सकता है।कृष्णकाव्य के पात्रों कृष्ण तथा ग्वाल बाल, राधा व अन्य गोपियों, नंद-यशोदा आदि का संबंध प्रकृति के अंचल में बसे हुए ब्रज- प्रदेश से रहा है। गोकुल – वृन्दावन आदि ब्रज के गांवों में ही उनके जीवन के संपूर्ण क्रियाकलाप संपन्न होते हैं।

मध्ययुगीन कृष्णकाव्य मुख्यतः ग्राम्य संस्कृति को ही प्रकट करता है। जिससे हम मध्ययुग के नगरीय जीवन से अनभिज्ञ से जान पड़ते है तथा इस समय का ग्राम्य जीवन इन कृष्णकाव्यों में बखूबी पिरोया गया है तथा इसके सभी प्रमुख पक्षों को कृष्णकाव्य में यथार्थ व यथोचित रूप में उद्घाटित किया गया है।

कृष्ण – काव्यों में जहाँ तक निवास स्थान का संबंध रहा है, इन कवियों की दृष्टि प्रायः महलों, अट्टालिकाओं वह भी कंचन निर्मित एवं मणिजडित पर ही – टिकी रही। यद्यपि कुछेक प्रसंगों में माटी के गृह एवं मवैया की चर्चा भी हुई है, जो यह स्पष्ट करता है कि समाज में कुछ लोग दारिद्रय की स्थिति से दो-दो हाथ कर रहे थे। इनका घर मिट्टी व घास फूस का बना होता था। इनकी जिजीविषा इन्हें जीवित रखे हुए थी।

कृष्णभक्त कवियों ने खान-पान के सन्दर्भ में कलेवा' या 'कलेऊ' की चर्चा की है, जो प्रातःकाल बच्चों को कराया जाता था जो कि आज नाश्ता का रूप ले चुका है। 'नाश्ता' नगरीय जीवन का प्रमुख अंग हो चुका है, जो बच्चों को नियमित रूप से उनके बिना कुछ कहे, उन्हें दे दिया जाता है। किन्तु मध्ययुगीन ग्रामीण बच्चे सुबह उठते ही कलेवा के लिए मचलने लगते हैं। देर होने पर वे रोने लगते थे, अड़ जाते थे, यहाँ तक की माँ की साड़ी पकड़ कर खींचने लगते है, जैसा कि श्रीकृष्ण को दर्शाया गया है। तब बच्चों को कलेवा मिलता था। परमानन्दास ने कलेऊ के लिए मंगलभोग शब्द का प्रयोग किया है-

"उठत प्रात मात जसोदा मंगल भोग देत दोऊ छोरा"[i]।

स्पष्ट है कि मध्ययुग का भोज्य पदार्थ अत्यंत स्वादिष्ट एवं लज्जतदार रहा होगा। भोजन की ये सम्पन्नता मध्यकाल के सामाजिक- स्वास्थ्य व जन स्वास्थ्य को उजागर करता है। इस समय हरी शाक-सब्जियों, दूध-दही आदि भी भरपूर मात्रा में उपयोग की जाती थी। साथ ही खान-पान में कुछ दुष्प्रभावी वस्तुएं भी प्रयुक्त होती थी। मादक पदार्थों का अवसर अवसर पर प्रयोग होता था। इसमें मदिरा, सोमरस, भांग, पान, ताम्बूल आदि का प्रयोग लोग करते थे।

मध्ययुग में वस्त्रों के प्रकार व गुणवत्ता को देखें तो यह युग वस्त्रों के सन्दर्भ में समृद्धशाली था वस्त्रों की उच्च गुणवत्ता एवं उसके प्रकारों ने इस युग के वस्त्र-विषयक व्यवस्था की व्यापकता को परिलक्षित करने का प्रयत्न किया है। चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत वस्त्रों की लम्बी सूची प्रस्तुत की गयी है, जिसमें बालक/बालिका, पुरुष व स्त्रियों के वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। देखा जा सकता है कि एक ही उपयोग के लिए वस्त्रों के अनेक प्रकार, अनेक रूप, अनेक शैली एवं अनेक नामों का निर्धारण किया गया है। सिर पर धारण के लिए कुलही. कुलह, कुलहिया, टिपारो, पगिया, पाग, चीतनी आदि कई शब्दों का प्रयोग होता था । मात्र नामों में ही अन्तर नहीं होता था, वरन् वस्त्र के रूपरंग व शैली में भी अन्तर मिलता था। 'पीताम्बर' अपने विशेष अर्थ के अतिरिक्त साधारणतया पीले वस्त्र के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था, क्योंकि पीताम्बर का स्वतंत्र उल्लेख भी मिलता है- "पीताम्बर कटि तट छवि अद्भुत"[ii]। और काछनी, गुलिया, उपरैना आदि अन्य वस्त्रों को भी पीला रंग का बताने के लिए 'पीत' शब्द का ही प्रयोग अनेकशः किया गया है-

"मोहन पीत झंगुलिया सोहै"[iii]

स्त्रियों के वस्त्रों के अनेक प्रकार मध्ययुग में उपलब्ध थे। ये मुख्य रूप से सारी, लहंगा, कंचुकी, ओढ़नी आदि का प्रयोग करती थीं। ये सभी वस्त्र विविध रंगों में उपलब्ध होते थे। इसमें सारियों के और भी प्रकारों का उल्लेख मिलता है, जैसे- चुनरी की सारी तनसुख सारी झूमक या झूमकी सारी, ढिंगनी की सारी आदि का नाम मिलता है-

"चुनरी चोली बनी चुनरी की सारी"[iv]

"तनसुख सारी पहिरि झीनी"[v]

"झूमक सारी तन गौरें हो"[vi]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वस्त्र उद्योग इस समय काफी ऊँचाई पर था, जिसमें स्वर्ण – धागों द्वारा भी वस्त्र का निर्माण होता था। यह युग वस्त्र के अनेक प्रकार व शैली के साथ विद्यमान था।

मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में लोकस्तरीय खेल-क्रीड़ाओं का उल्लेख मिलता है। सामाजिक जीवन में बच्चों को रंगबिरंगे खिलौनों एवं झालरों से बहलाने की प्रथा प्राचीन रही है। मध्ययुगीन कवियों ने झुनझुना या खुनखुना का उल्लेख करते हुए यशोदा के द्वारा खुनखुना बजाकर कृष्ण को फुसलाने का वर्णन मिलता है। पालने में कृष्ण सोए हुए है। बड़ी स्वाभाविकता के साथ इन कवियों ने पालने पर किलकिरियाँ भरते बालक कृष्ण को खेलते दिखाया है ---

"सुन्दर स्याम पालने झूले ।

जसुमति माय निकट अति बैठी, निरखि निरखि मन फूले।

झुनझुना लेके बजावत रूचि सों लाल ही के अनुकूले"[vii] ।

बालक कृष्ण की खेल-क्रीड़ाओं में माता यशोदा भी रूचि लेती है। उन्हें कृष्ण का खेल देखते हुए हर्ष का अनुभव होता है और मन में प्रीति उपजती है।

मध्ययुगीन सामाजिक व्यवसाय के आधार पर समाज के अनेक वर्ग व जातियों का नाम कृष्णकाव्य में उपलब्ध हुआ है। भारतीय लोक-संस्कृति में इन जातियों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इन जातियों द्वारा किये जाने वाले लोकस्तरीय व्यापारों, व्यवसायों में कृषि, गोचारण, दूध-दही मक्खन आदि का क्रय-विक्रय शामिल है। सामाजिक जीवन के व्यवस्था के लिए जातीय-धन्धों की यह परम्परा अपरिहार्य होती है। नागर संस्कृति के अनुरूप बड़े-बड़े व्यापारों के लिए जैसा कि अनिवार्य होता है, इन जातीय धन्धों में मूलधन भी नहीं लगाना पड़ता। लोकस्तरीय इन धन्धों में श्रम ही मूल साधन है।

पशुपालन मध्यकाल का अति महत्वपूर्ण व्यवसाय था। कृष्ण गोचारण के लिए वन जाते हैं और यशोदा से कहते है कि- "मैया हौं गाइ चरावन जैहों"।

स्पष्ट होता है कि पशुपालन के अन्तर्गत गायों को चराने के लिए प्रायः बालकों को ही भेजा जाता था। बालक ही गायों को चराने खिलाने-पिलाने के लिए उत्तरदायी होते थे। यह भी इन रचनाओं से ध्यातव्य होता है कि दूध-दही आदि के व्यवसाय में अहीर जाति की स्त्रियाँ जितना सक्रिय होती है, उतने पुरुष नहीं। कृष्ण काव्य में आए उल्लेखों के आधार पर यह परिचय मिलता है कि ग्वालिने ही गोदोहन करती, दही जमाती, मट्ठा मारती एवं मक्खन निकाला करती थी। वे ग्वालिने ही सिर पर मेडुरी रख कर उस पर मटकी में दूध-दही- मक्खन आदि रखकर बेचने जाया करती थी।

"बेचन चली दधि ब्रजनारि।

सीस धरि धरि माट मटुकी बढ़ी सोमा भारी"[viii]।

सारांश यह कि मध्ययुग में कई मुख्य व गौड़ लोक-व्यवसाय व व्यापार विद्यमान थे। जिनसे जुड़े हुए लोग अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की परिपूर्ती इन्हीं व्यवसायों से करते थे ये इनके आजीविका के साधन के रूप में कार्य करते थे। इन व्यवसायों में स्वर्णकार, दर्जी, बढ़ई या लोहार, माली, नट व बाजीगर, धोबी, नाई, बारी, दाई, कहार आदि आते हैं। इनमें से कुछ जातियाँ वार्षिक मजदूरी पर कार्य करते थे अर्थात् वे अपने यजमान का कार्य करते थे तथा वर्ष में एक बार अपनी मजदूरी स्वरूप धन, अनाज, वस्त्र आदि लेते थे।

स्पष्ट है कि लोक तत्व की दृष्टि से सामान्य जन जीवन के स्तर पर विद्यमान धान्धिकों की अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। वस्तुतः जिसे सामाजिक संस्कृति या लोक संस्कृति कहते हैं वह इन व्यवसायियों से अलग होकर निरर्थक हो सकती है। लोक-वर्ग के इन व्यवसायियों का दृष्टिकोण आधुनिक अर्थो में व्यावसायिक जिसमें विकट स्वार्थ संन्निहित होता है नहीं होता बल्कि उनके कर्म की नींव सेवा भावना, लोक-सांस्कृतिक चेतना, आस्था एवं पैतृक परम्पराओं पर आधारित होती हैं।

'उत्सवप्रिया हि मानवाः' महाकवि कालिदास की इस उक्ति का अर्थ है- मनुष्य स्वभाव से ही उत्सवप्रिय होते है धन-धान्य या सुख-वैभव की प्राप्ति पर विजयलाभ के अवसर पर प्रकृति की रमणीय छटा देखकर मानव मन हर्षातिरेक से भर उठता है। तभी वह भाँति-भाँति के उत्सव मनाने में तत्पर हो जाता है। यह तो मानव मन के मूल में है किन्तु मनुष्य की उत्सवप्रियता उसके मानस में ही सिमट कर नहीं रह जाती। वह परम्परा से प्राप्त कथा कहानियों पर उनमें चर्चित घटनाओं पर पूर्ण विश्वास करता है और उन्हें अपनी आस्था की वस्तु बनाकर धार्मिक व सांस्कृतिक महत्व देता है।

कृष्णभक्त कवियों द्वारा उनकी रचनाओं में वर्णित प्रमुख त्योहार अग्रलिखित हैं।

ब्रज में चैत्र शुक्लपक्ष तृतीया को कुमारी कन्याओं द्वारा 'गौर या गनगौर पूजने का एक त्योहार मनाया जाता है। लोक मानस में इस पूजन के प्रति धारणा होती है कि ऐसा करने से पूजन करने वाली कन्याओं को योग्य वर की प्राप्ति होगी। कृष्ण कवियों ने भी इस भावना की ओर संकेत किया है। राधा के गनगौर पूजने का कारण कृष्ण को पतिरूप में पाने की उनकी इच्छा ही बताई गयी है-

"श्री राधे कौन गौर ते पूजी"[ix]।

सूरदास ने इसी प्रकार की विनय पूजा शिव व सूर्य के लिए भी कराई है। 'अक्षय तृतीया का त्योहार बैशाख मास शुक्लपक्ष की तृतीया को मनाया जाता है। कृष्ण साहित्य में इसका प्रमुखता से वर्णन मिलता है, किन्तु जिस प्रकार इस त्योहार का वर्णन किया गया है, वह लोकरीति से बहुत दूर जान पड़ता है। कवियों ने कृष्ण के अगरजा एवं चंदन चर्चित बदन तथा उस पर गोपियों के रीझने का वर्णन किया है। प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने इस त्योहार के अवसर पर चंदन, खस आदि शीतल वस्तुओं का उल्लेख इस त्योहार के मनाए जाने में प्रमुख साधन के रूप में किया है।

'रक्षाबंधन' का त्योहार सामाजिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण है। यह भाई-बहन के पवित्र प्रेम का त्योहार माना जाता है। यह त्योहार श्रावण शुक्ल पूर्णिमा पड़ता है, जैसा कि परमानन्ददास व चतुर्भुतदास ने भी कहा है[x]। रक्षा को ही लोक-भाषा में 'रच्छा', 'राखी', या राछी' भी कहते हैं। कृष्ण-कवियों ने माता यशोदा, द्विजों, ऋषियों एवं पुरोहितों द्वारा भी राखी बांधे जाने का उल्लेख किया है[xi]।

'अन्नकूट' नामक उत्सव जो कार्तिक मास में दीपावली के दूसरे दिन प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ मनाया जाता है। इसमें अनेक प्रकार के व्यंजनों और फलों से भगवान का भोग लगाते है[xii]। सूर ब्रजकोश में अन्नकूट का अर्थ अन्न का ढेर भी दिया गया है। दीपावली के दूसरे ही दिन पड़ने के कारण महान् त्यौहार दीपावली की तैयारियाँ एवं प्रसन्नता के मारे संभवतः लोग अन्नकूट को भूल ही जाते हैं। इसी से यशोदा जी दीपावली के पांचक दिन पहले गोपियों को बुलाकर कहती हैं कि उन सबों ने कुलदेव सुरपति इन्द्र की पूजा तो बिसरा ही दी[xiii]। यशोदा जी के याद दिलाने पर "चौंक परी सब गोकुल नारी" और उन्होंने यशोदा से कहा "भली कहीं सबही सुधि भूली, तुम्हहिं करि सुधि भारी।" इस प्रकार यह एक सामान्य त्योहार था।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि मध्ययुग का समाज जैसा कि कृष्ण भक्ति साहित्य में वर्णित किया गया है उस समय के सभी लोकाचारों, लोक-संस्कारों अपने आप में समेटे हुए हैं। इन लोक व्यवहारों में कुछ तो परम्परा से चली आ रही प्रथाएं हैं तो कुछ तदयुगीन उद्भूत नवीन कृत्य इनमें कुछ सामाजिक व्यवहार ऐसे भी हैं, जो मात्र कोरी कल्पना हैं, मान्यता हैं। कुछ रीतियाँ अन्धविश्वास के चरम तक पहुँच गयी हैं। इनके सत्य / असत्य की जाँच किए बगैर इनका व्यवहार मध्ययुगीन समाज द्वारा किया जाता था। इस प्रकार समाज में व्यवहृत अनेकों रीतियाँ, आचार -व्यवहार आदि मध्ययुगीन समाज-विषयक समृद्धि को दर्शाते है। कृष्णभक्त कवियों की सामाजिक जागरूकता का प्रमाण इनके द्वारा प्रणीत साहित्य से मिलता है।

REFERENCES

1. परमानन्दसागर, पद 616
2. सूरसागर, पद 625
3. परमानन्दसागर, पद 90
4. चतुर्भुजदास, पदसंग्रह 365
5. चतुर्भुजदास, पदसंग्रह 202
6. सूरसागर, 2794
7. नन्ददास ग्रन्थावली, भाग 2, परिशिष्ट 8
8. सूरसागर, 1299
9. कीर्तन संग्रह परमानंद दास भाग 1 पृष्ठ 272
10. परमानन्ददास, पद 798; चतुर्भुजदाससंग्रह, पद 134
11. कुंभनदास पद संग्रह, 127, परमानन्ददास, 795-97
12. ब्रजभाषा सूर कोश: सं. डॉ. प्रेम नारायण टंडन, प्रथम खंड प्रथम संस्करण, पृ0 51
13. सूरसागर, पद 812